12071CH03

3

ओम थानवी

अतीत में दबे पाँव

अभी भी मुअनजो-दड़ो[1] और हड़प्पा[2] प्राचीन भारत के ही नहीं, दुनिया के दो सबसे पुराने नियोजित शहर माने जाते हैं। ये सिंधु घाटी सभ्यता के परवर्ती यानी परिपक्व दौर के शहर हैं। खुदाई में और शहर भी मिले हैं। लेकिन मुअनजो-दड़ो ताम्र काल के शहरों में सबसे बड़ा है। वह सबसे उत्कृष्ट भी है। व्यापक खुदाई यहीं पर संभव हुई। बड़ी तादाद में इमारतें, सड़कें, धातु-पत्थर की मूर्तियाँ, चाक पर बने चित्रित भांडे, मुहरें, साज़ो-सामान और खिलौने आदि मिले। सभ्यता का अध्ययन संभव हुआ। उधर सैकड़ों मील दूर हड़प्पा के ज़्यादातर साक्ष्य रेललाइन बिछने के दौरान 'विकास की भेंट चढ़ गए।'

मुअनजो-दड़ो के बारे में धारणा है कि अपने दौर में वह घाटी की सभ्यता का केंद्र रहा होगा। यानी एक तरह की राजधानी। माना जाता है यह शहर दो सौ हैक्टर क्षेत्र में फैला था। आबादी कोई पचासी हज़ार थी। ज़ाहिर है, पाँच हज़ार साल पहले यह आज के 'महानगर' की परिभाषा को भी लाँघता होगा।

दिलचस्प बात यह है कि सिंधु घाटी मैदान की संस्कृति थी, पर पूरा मुअनजो-दड़ो छोटे-मोटे टीलों पर आबाद था। ये टीले प्राकृतिक नहीं थे। कच्ची और पक्की दोनों तरह की ईंटों

1. पाकिस्तान के सिंध प्रांत में स्थित पुरातात्विक स्थान, जहाँ सिंधु घाटी सभ्यता बसी थी। मुअनजो-दड़ो का अर्थ है मुर्दों का टीला। वर्तमान समय में इसे मोहनजोदड़ो के नाम से जाना जाता है।
2. पाकिस्तान के पंजाब प्रांत का पुरातात्विक स्थान, जहाँ सिंधु घाटी सभ्यता का दूसरा प्रमुख नगर बसा था

से धरती की सतह को ऊँचा उठाया गया था, ताकि सिंधु का पानी बाहर पसर आए तो उससे बचा जा सके।

मुअनजो-दड़ो की खूबी यह है कि इस आदिम शहर की सड़कों और गलियों में आप आज भी घूम-फिर सकते हैं। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति का सामान भले अजायबघरों की शोभा

मुअनजो-दड़ो की एक गली

मुअनजो-दड़ो की एक मुख्य सड़क जो 33 फीट चौड़ी है

बढ़ा रहा हो, शहर जहाँ था अब भी वहीं है। आप इसकी किसी भी दीवार पर पीठ टिका कर सुस्ता सकते हैं। वह एक खंडहर क्यों न हो, किसी घर की देहरी पर पाँव रखकर आप सहसा सहम सकते हैं, रसोई की खिड़की पर खड़े होकर उसकी गंध महसूस कर सकते हैं। या

शहर के किसी सुनसान मार्ग पर कान देकर उस बैलगाड़ी की रुन-झुन सुन सकते हैं जिसे आपने पुरातत्त्व की तसवीरों में मिट्टी के रंग में देखा है। सच है कि यहाँ किसी आँगन की टूटी-फूटी सीढ़ियाँ अब आपको कहीं नहीं ले जातीं; वे आकाश की तरफ़ अधूरी रह जाती हैं। लेकिन उन अधूरे पायदानों पर खड़े होकर अनुभव किया जा सकता है कि आप दुनिया की छत पर हैं; वहाँ से आप इतिहास को नहीं, उसके पार झाँक रहे हैं।

सबसे ऊँचे चबूतरे पर बड़ा बौद्ध स्तूप है। मगर यह मुअनजो-दड़ो की सभ्यता के बिखरने के बाद एक जीर्ण-शीर्ण टीले पर बना। कोई पचीस फुट ऊँचे चबूतरे पर छब्बीस सदी पहले बनी ईंटों के दम पर स्तूप को आकार दिया गया। चबूतरे पर भिक्षुओं के कमरे भी हैं। 1922 में जब राखालदास बनर्जी यहाँ आए, तब वे इसी स्तूप की खोजबीन करना चाहते थे। इसके गिर्द खुदाई शुरू करने के बाद उन्हें इलहाम[3] हुआ कि यहाँ ईसा पूर्व के निशान हैं। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के महानिदेशक जॉन मार्शल के निर्देश पर खुदाई का व्यापक अभियान शुरू हुआ। धीमे-धीमे यह खोज विशेषज्ञों को सिंधु घाटी सभ्यता की देहरी पर ले आई। इस खोज ने भारत को मिस्र और मेसोपोटामिया (इराक) की प्राचीन सभ्यताओं के समकक्ष ला खड़ा किया। दुनिया की प्राचीन सभ्यता होने के भारत के दावे को पुरातत्त्व का वैज्ञानिक आधार मिल गया।

पर्यटक बँगले से एक सर्पिल पगडंडी पार कर हम सबसे पहले इसी स्तूप पर पहुँचे। पहली ही झलक ने हमें अपलक कर दिया। इसे नागर भारत का सबसे पुराना लैंडस्केप कहा गया है। यह शायद सबसे रोमांचक भी है। न आकाश बदला है, न धरती। पर कितनी सभ्यताएँ, इतिहास और कहानियाँ बदल गईं। इस ठहरे हुए दृश्य में हज़ारों साल से लेकर पलभर पहले तक की धड़कन बसी हुई है। इसे देखकर सुना जा सकता है। भले ही किसी जगह के बारे में हमने कितना पढ़-सुन रखा हो, तसवीरें या वृत्तचित्र देखे हों, देखना अपनी आँख से देखना है।

3. अनुभूति

बाकी सब आँख का झपकना है। जैसे यात्रा अपने पाँव चलना है, बाकी सब तो कदम-ताल है।

मौसम जाड़े का था पर दुपहर की धूप बहुत कड़ी थी। सारे आलम को जैसे एक फीके रंग में रंगने की कोशिश करती हुई । यह इलाका राजस्थान से बहुत मिलता-जुलता है। रेत के टीले नहीं हैं। खेतों का हरापन यहाँ है। मगर बाकी वही खुला आकाश, सूना परिवेश; धूल, बबूल और ज़्यादा ठंड, ज़्यादा गरमी। मगर यहाँ की धूप का मिजाज़ जुदा है। राजस्थान की धूप पारदर्शी है। सिंध की धूप चौंधियाती है। तसवीर उतारते वक्त आप कैमरे में ज़रूरी पुर्ज़े न घुमाएँ तो ऐसा जान पड़ेगा जैसे दृश्यों के रंग उड़े हुए हों।

पर इससे एक फ़ायदा हुआ। हमें हर दृश्य पर नज़रें दुबारा फिरानी पड़ती । इस तरह बार-बार निहारें तो दृश्य ज़ेहन में ऐसे ठहरते हैं मानो तसवीर देखकर उनकी याद ताज़ा करने की कभी ज़रूरत न पड़े।

स्तूप वाला चबूतरा मुअनजो-दड़ो के सबसे खास हिस्से के एक सिरे पर स्थित है। इस हिस्से को पुरातत्त्व के विद्वान 'गढ़' कहते हैं। चारदीवारी के भीतर ऐतिहासिक शहरों के सत्ता-केंद्र अवस्थित होते थे, चाहे वह राजसत्ता हो या धर्मसत्ता। बाकी शहर गढ़ से कुछ दूर बसे होते थे। क्या यह रास्ता भी दुनिया को मुअनजो-दड़ो ने दिखाया?

मुअनजो-दड़ो में बौद्ध स्तूप

सभी अहम और अब दुनिया-भर में प्रसिद्ध इमारतों के खंडहर चबूतरे के पीछे यानी पश्चिम में हैं। इनमें 'प्रशासनिक' इमारतें, सभा भवन, ज्ञानशाला और कोठार हैं। वह अनुष्ठानिक महाकुंड भी जो सिंधु घाटी सभ्यता के अद्‌वितीय वास्तुकौशल को स्थापित करने के लिए अकेला ही काफ़ी माना जाता है। असल में यहाँ यही एक निर्माण है जो अपने मूल स्वरूप के बहुत नज़दीक बचा रह सका है। बाकी इमारतें इतनी उजड़ी हुई हैं कि कल्पना और बरामद चीज़ों के जोड़ से उनके उपयोग का अंदाज़ा भर लगाया जा सकता है।

नगर नियोजन की मुअनजो-दड़ो अनूठी मिसाल है। इस कथन का मतलब आप बड़े चबूतरे से नीचे की तरफ़ देखते हुए सहज ही भाँप सकते हैं। इमारतें भले खंडहरों में बदल चुकी हों मगर 'शहर' की सड़कों और गलियों के विस्तार को स्पष्ट करने के लिए ये खंडहर काफ़ी हैं। यहाँ की कमोबेश सारी सड़कें सीधी हैं या फिर आड़ी। आज वास्तुकार इसे 'ग्रिड प्लान' कहते हैं। आज की सेक्टर-मार्का कॉलोनियों में हमें आड़ा-सीधा 'नियोजन' बहुत मिलता है। लेकिन वह रहन-सहन को नीरस बनाता है। शहरों में नियोजन के नाम पर भी हमें अराजकता ज़्यादा हाथ लगती है। ब्रासीलिया या चंडीगढ़ और इस्लामाबाद 'ग्रिड' शैली के शहर हैं जो आधुनिक नगर नियोजन के प्रतिमान ठहराए जाते हैं, लेकिन उनकी बसावट शहर के खुद विकसने का कितना अवकाश छोड़ती है इस पर बहुत शंका प्रकट की जाती है।

मुअनजो-दड़ो की साक्षर सभ्यता एक सुसंस्कृत समाज की स्थापना थी, लेकिन उसमें नगर नियोजन और वास्तुकला की आखिर कितनी भूमिका थी?

स्तूप वाले चबूतरे के पीछे 'गढ़' और ठीक सामने 'उच्च' वर्ग की बस्ती है। उसके पीछे पाँच किलोमीटर दूर सिंधु बहती है। पूरब की इस बस्ती से दक्षिण की तरफ़ नज़र दौड़ाते हुए पूरा पीछे घूम जाएँ तो आपको मुअनजो-दड़ो के खंडहर हर जगह दिखाई देंगे। दक्षिण में जो टूटे-फूटे घरों का जमघट है, वह कामगारों की बस्ती है। कहा जा

सकता है इतर वर्ग की। संपन्न समाज में वर्ग भी होंगे। लेकिन क्या निम्न वर्ग यहाँ नहीं था? कहते हैं, निम्न वर्ग के घर इतनी मज़बूत सामग्री के नहीं रहे होंगे कि पाँच हज़ार साल टिक सकें। उनकी बस्तियाँ और दूर रही होंगी। यह भी है कि सौ साल में अब तक इस इलाके के एक-तिहाई हिस्से की खुदाई ही हो पाई है। अब वह भी बंद हो चुकी है।

हम पहले स्तूप के टीले से महाकुंड के विहार की दिशा में उतरे। दाईं तरफ़ एक लंबी गली दीखती है। इसके आगे महाकुंड है। पता नहीं सायास है या संयोग कि धरोहर के प्रबंधकों ने उस गली का नाम दैव मार्ग (डिविनिटि स्ट्रीट) रखा है। माना जाता है कि उस सभ्यता में सामूहिक स्नान किसी अनुष्ठान का अंग होता था। कुंड करीब चालीस फुट लंबा और पच्चीस फुट चौड़ा है। गहराई सात फुट। कुंड में उत्तर और दक्षिण से सीढ़ियाँ उतरती हैं। इसके तीन तरफ़ साधुओं के कक्ष बने हुए हैं। उत्तर में दो पाँत में आठ स्नानघर हैं। इनमें किसी का द्वार दूसरे के सामने नहीं खुलता। सिद्ध वास्तुकला का यह भी एक नमूना है।

इस कुंड में खास बात पक्की ईंटों का जमाव है। कुंड का पानी रिस न सके और बाहर

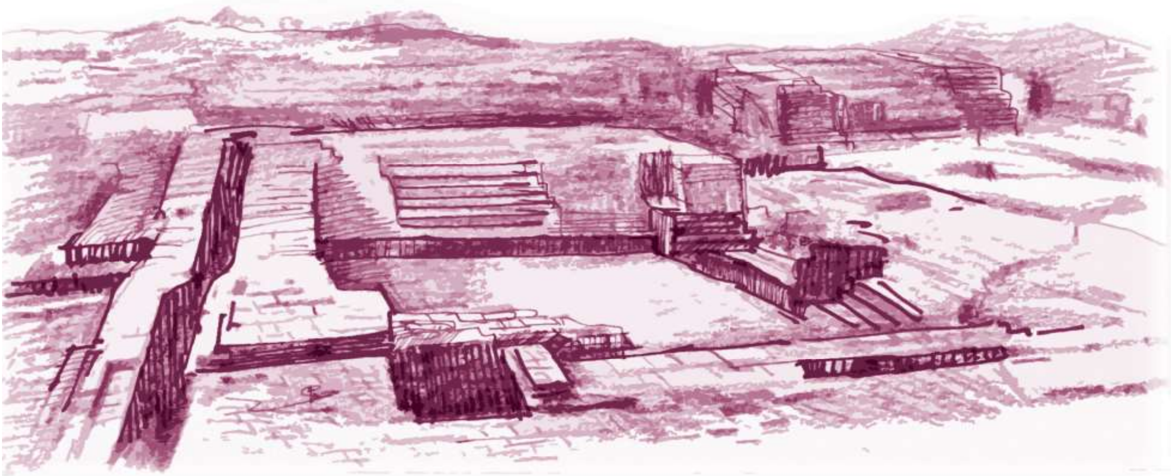

मुअनजो-दड़ो का प्रसिद्ध जल कुंड

का 'अशुद्ध' पानी कुंड में न आए, इसके लिए कुंड के तल में और दीवारों पर ईंटों के बीच चूने और चिरोड़ी के गारे का इस्तेमाल हुआ है। पार्श्व की दीवारों के साथ दूसरी दीवार खड़ी की गई है जिसमें सफ़ेद डामर का प्रयोग है। कुंड के पानी के बंदोबस्त के लिए एक तरफ़ कुआँ है। दोहरे घेरे वाला यह अकेला कुआँ है। इसे भी कुंड के पवित्र या अनुष्ठानिक होने का प्रमाण माना गया है। कुंड से पानी को बाहर बहाने के लिए नालियाँ हैं। इनकी खासियत यह है कि ये भी पक्की ईंटों से बनी हैं और ईंटों से ढकी भी हैं।

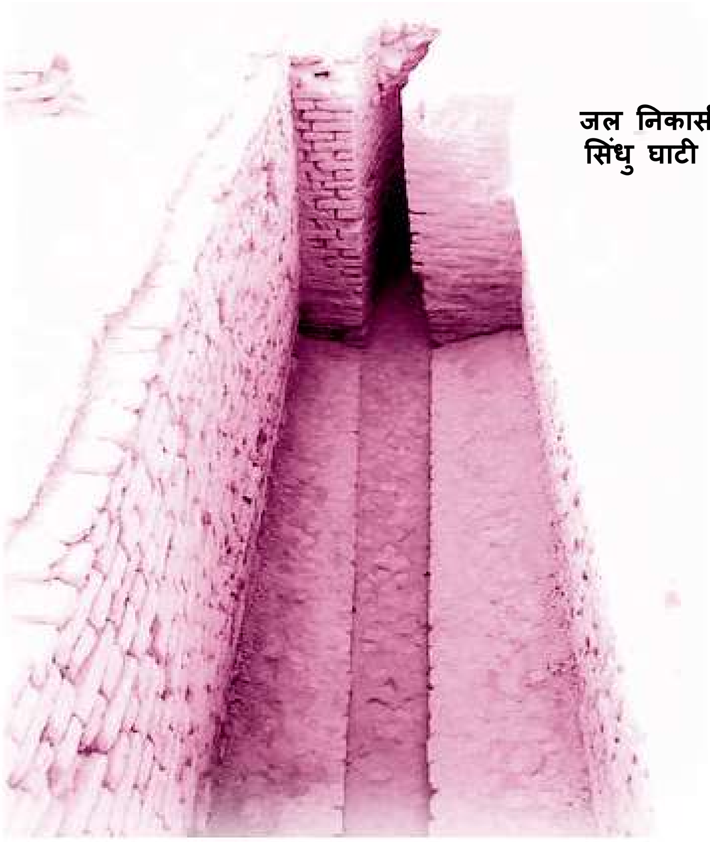

जल निकासी का उन्नत प्रबंध जो सिंधु घाटी की अनूठी विशेषता है

पक्की और आकार में समरूप धूसर ईंटें तो सिंधु घाटी सभ्यता की विशिष्ठा" पहचान मानी ही गई हैं, ढकी हुई नालियों का उल्लेख भी पुरातात्त्विक विद्वान और इतिहासकार ज़ोर देकर करते हैं। पानी-निकासी का ऐसा सुव्यवस्थित बंदोबस्त इससे पहले के इतिहास में नहीं मिलता।

महाकुंड के बाद हमने 'गढ़' की 'परिक्रमा' की। कुंड के दूसरी तरफ़ विशाल कोठार है। कर के रूप में हासिल अनाज शायद यहाँ जमा किया जाता था। इसके निर्माण रूप खासकर चौकियों और हवादारी को देखकर ऐसा कयास लगाया गया है। यहाँ नौ-नौ चौकियों की तीन कतारें हैं। उत्तर में एक गली है जहाँ बैलगाड़ियों का-जिनके प्रयोग के साक्ष्य मिले हैं-ढुलाई के लिए आवागमन होता होगा। ठीक इसी तरह का कोठार हड़प्पा में भी पाया गया है।

अब यह जगज़ाहिर है कि सिंधु घाटी के दौर में व्यापार ही नहीं, उन्नत खेती भी होती थी। बरसों यह माना जाता रहा कि सिंधु घाटी

के लोग अन्न उपजाते नहीं थे, उसका आयात करते थे। नयी खोज ने इस खयाल को निर्मूल साबित किया है। बल्कि अब कुछ विद्वान मानते हैं कि वह मूलतः खेतिहर और पशुपालक सभ्यता ही थी। लोहा शुरू में नहीं था पर पत्थर और ताँबे की बहुतायत थी। पत्थर सिंध में ही था, ताँबे की खानें राजस्थान में थीं। इनके उपकरण खेती-बाड़ी में प्रयोग किए जाते थे। जबकि मिस्र और सुमेर में चकमक और लकड़ी के उपकरण इस्तेमाल होते थे। इतिहासकार इरफ़ान हबीब के मुताबिक यहाँ के लोग रबी की फ़सल लेते थे। कपास, गेहूँ, जौ, सरसों और चने की उपज के पुख्ता सबूत खुदाई में मिले हैं। वह सभ्यता का तर-युग था जो धीमे-धीमे सूखे में ढल गया।

विद्वानों का मानना है कि यहाँ ज्वार, बाजरा और रागी की उपज भी होती थी। लोग खजूर, खरबूज़े और अंगूर उगाते थे। झाड़ियों से बेर जमा करते थे। कपास की खेती भी होती थी। कपास को छोड़कर बाकी सबके बीज मिले हैं और उन्हें परखा गया है। कपास के बीज तो नहीं, पर सूती कपड़ा मिला है। ये दुनिया में सूत के दो सबसे पुराने नमूनों में एक है। दूसरा सूती कपड़ा तीन हज़ार ईसा पूर्व का है जो जॉर्डन में मिला। मुअनजो-दड़ो में सूत की कताई-बुनाई के साथ रंगाई भी होती थी। रंगाई का एक छोटा कारखाना खुदाई में माधोस्वरूप वत्स को मिला था। छालटी (लिनन) और ऊन कहते हैं यहाँ सुमेर से आयात होते थे। शायद सूत उनको निर्यात होता हो। जैसा कि बाद में सिंध से मध्य एशिया और यूरोप को सदियों हुआ। प्रसंगवश, मेसोपोटामिया के शिलालेखों में मुअनजो-दड़ो के लिए 'मेलुहा' शब्द का संभावित प्रयोग मिलता है।

महाकुंड के उत्तर-पूर्व में एक बहुत लंबी-सी इमारत के अवशेष हैं। इसके बीचोंबीच खुला बड़ा दालान है। तीन तरफ़ बरामदे हैं। इनके साथ कभी छोटे-छोटे कमरे रहे होंगे। पुरातत्त्व के जानकार कहते हैं कि धार्मिक अनुष्ठानों में ज्ञानशालाएँ सटी हुई होती थीं, उस नज़रिए से इसे 'कॉलेज ऑफ प्रीस्ट्स' माना जा सकता है। दक्षिण में एक और भग्न इमारत है। इसमें बीस खंभों वाला एक बड़ा हॉल है। अनुमान है कि यह राज्य सचिवालय, सभा-भवन या कोई सामुदायिक केंद्र रहा होगा।

गढ़ की चारदीवारी लाँघ कर हम बस्तियों की तरफ़ बढ़े। ये 'गढ़' के मुकाबले छोटे टीलों पर बनी हैं, इसलिए इन्हें 'नीचा नगर' कहकर भी पुकारा जाता है। खुदाई की प्रक्रिया में टीलों का आकार घट गया है, कहीं-कहीं वे फिर ज़मीन से जा मिले हैं और बस्ती के कुएँ, लगता है जैसे मीनारों की शक्ल में धरती छोड़कर बाहर निकल आए हैं।

पूरब की बस्ती 'रईसों की बस्ती' है। हालाँकि आज के युग में पूरब की बस्तियाँ गरीबों की बस्तियाँ मानी जाती हैं। मुअनजो-दड़ो इसका उलट था। यानी बड़े घर, चौड़ी सड़कें, ज़्यादा कुएँ।

मुअनजो-दड़ो के सभी खंडहरों को खुदाई कराने वाले पुरातत्ववेत्ताओं का संक्षिप्त नाम दे दिया गया है। जैसे 'डीके' हलका-दीक्षित काशीनाथ की खुदाई। उनके नाम पर यहाँ दो हलके हैं। 'डीके' क्षेत्र दोनों बस्तियों में सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। शहर की मुख्य सड़क (फ़र्स्ट स्ट्रीट) यहीं पर है। यह बहुत लंबी सड़क है, मानो कभी पूरे शहर को नापती हो। अब यह आधा मील बची है। इसकी चौड़ाई तैंतीस फ़ुट है। मुअनजो-दड़ो से तीन तरह के वाहनों के साक्ष्य मिले हैं। इनमें सबसे चौड़ी बैलगाड़ी रही होगी। इस सड़क पर दो बैलगाड़ियाँ एक साथ आसानी से आ-जा सकती हैं। यह सड़क वहाँ पहुँचती है, जहाँ कभी 'बाज़ार' था।

इस सड़क के दोनों ओर घर हैं। लेकिन सड़क की ओर सारे घरों की सिर्फ़ पीठ दिखाई देती है। यानी कोई घर सड़क पर नहीं खुलता; उनके दरवाज़े अंदर गलियों में हैं। दिलचस्प संयोग है कि चंडीगढ़ में ठीक यही शैली पचास साल पहले कार्बूजिए ने इस्तेमाल की। वहाँ भी कोई घर मुख्य सड़क पर नहीं खुलता। आपको किसी के घर जाने के लिए मुख्य सड़क से पहले सेक्टर के भीतर दाखिल होना पड़ता है, फिर घर की गली में, फिर घर में। क्या कार्बूजिए ने यह सीख मुअनजो-दड़ो से ली? कहते हैं, कविता में से कविता निकलती है। कलाओं की तरह वास्तुकला में भी कोई प्रेरणा चेतन-अवचेतन ऐसे ही सफ़र करती होगी!

ढकी हुई नालियाँ मुख्य सड़क के दोनों तरफ़ समांतर दिखाई देती हैं। बस्ती के भीतर भी इनका यही रूप है। हर घर में एक स्नानघर है। घरों के भीतर से पानी या मैल की नालियाँ बाहर हौदी तक आती हैं और फिर नालियों के जाल से जुड़ जाती हैं। कहीं-कहीं वे खुली हैं पर ज़्यादातर बंद हैं। स्वास्थ्य के प्रति मुअनजो-दड़ो के बाशिंदों के सरोकार का यह बेहतर उदाहरण है। बस्ती के भीतर छोटी सड़कें हैं और उनसे छोटी गलियाँ भी। छोटी सड़कें नौ से बारह फ़ुट तक चौड़ी हैं। इमारतों से पहले जो चीज़ दूर से ध्यान खींचती है, वह है कुओं का प्रबंध। ये कुएँ भी पकी हुई एक ही आकार की ईंटों से बने हैं। इतिहासकार कहते हैं सिंधु घाटी सभ्यता संसार में पहली

ज्ञात संस्कृति है जो कुएँ खोद कर भू-जल तक पहुँची। उनके मुताबिक केवल मुअनजो-दड़ो में सात सौ के करीब कुएँ थे।

नदी, कुएँ, कुंड, स्नानागार और बेजोड़ पानी-निकासी। क्या सिंधु घाटी सभ्यता को हम जल-संस्कृति कह सकते हैं?

मुअनजो-दड़ो का एक कुआँ

बड़ी बस्ती में पुरातत्त्वशास्त्री काशीनाथ दीक्षित के नाम पर एक हलका 'डीके-जी' कहलाता है। इसके घरों की दीवारें ऊँची और मोटी हैं। मोटी दीवार का अर्थ यह लगाया जाता है कि उस पर दूसरी मंज़िल भी रही होगी। कुछ दीवारों में छेद हैं जो संकेत देते हैं कि दूसरी मंज़िल उठाने के लिए शायद यह शहतीरों की जगह हो। सभी घर ईंट के हैं। एक ही आकार की ईंटें-1:2:4 के अनुपात की। सभी भट्टी में पकी हुईं। हड़प्पा से हटकर, जहाँ पक्की और कच्ची ईंटों का मिला-जुला निर्माण उजागर हुआ है। मुअनजो-दड़ो में पत्थर का प्रयोग मामूली हुआ। कहीं-कहीं नालियाँ ही अनगढ़ पत्थरों से ढकी दिखाई दीं।

इन घरों में दिलचस्प बात यह है कि सामने की दीवार में केवल प्रवेश द्वार बना है,

कोई खिड़की नहीं है। खिड़कियाँ शायद ऊपर की दीवार में रहती हों, यानी दूसरी मंज़िल पर। बड़े घरों के भीतर आँगन के चारों तरफ़ बने कमरों में खिड़कियाँ ज़रूर हैं। बड़े आँगन वाले घरों के बारे में समझा जाता है कि वहाँ कुछ उद्‌यम होता होगा। कुम्हारी का काम या कोई धातु-कर्म। हालाँकि सभी घर खंडहर हैं और दिखाई देने वाली चीज़ों से हम सिर्फ़ अंदाज़ा लगा सकते हैं।

घर छोटे भी हैं और बड़े भी। लेकिन सब घर एक कतार में हैं। ज़्यादातर घरों का आकार तकरीबन तीस-गुणा-तीस फ़ुट का होगा। कुछ इससे दुगने और तिगुने आकार के भी हैं। इनकी वास्तु शैली कमोबेश एक-सी प्रतीत होती है। व्यवस्थित और नियोजित शहर में शायद इसका भी कोई कायदा नगरवासियों पर लागू हो। एक घर को 'मुखिया' का घर कहा जाता है। इसमें दो आँगन और करीब बीस कमरे हैं।

डीके-बी, सी हलका आगे पूरब में है। दाढ़ी वाले 'याजक-नरेश' की मूर्ति इसी तरफ़ के एक घर से मिली थी। डीके-जी की "मुख्य सड़क" पर दक्षिण की ओर बढ़ें तो डेढ़ फर्लांग की दूरी पर 'एचआर' हलका है। सड़क उसे दो भागों में बाँट देती है। ये हलका हेरल्ड हरग्रीव्ज के नाम पर है जिन्होंने 1924-25 में राखालदास बनर्जी के बाद खुदाई करवाई थी। यहीं पर एक बड़े घर में कुछ कंकाल मिले थे, जिन्हें लेकर कई तरह की कहानियाँ बनती रहीं। प्रसिद्‌ध 'नर्तकी' शिल्प भी यहीं एक छोटे घर की खुदाई में निकला था। इसके बारे में पुरातत्त्वविद मार्टिमर वीलर ने कहा था कि संसार में इसके जोड़ की दूसरी चीज़ शायद ही होगी। यह मूर्ति अब दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में है।

यहीं पर एक बड़ा घर है जिसे उपासना-केंद्र समझा जाता है। इसमें आमने-सामने की दो चौड़ी सीढ़ियाँ ऊपर की (ध्वस्त) मंज़िल की तरफ़ जाती हैं।

वितान

पश्चिम में-गढ़ी के ठीक पीछे-माधोस्वरूप वत्स के नाम पर वीएस हिस्सा है। यहाँ वह 'रंगरेज़ का कारखाना' भी लोग चाव से देखते हैं, जहाँ ज़मीन में ईंटों के गोल गड्ढे उभरे हुए हैं। अनुमान है कि इनमें रंगाई के बड़े बर्तन रखे जाते थे। दो कतारों में सोलह छोटे एक-मंज़िला मकान हैं। एक कतार मुख्य सड़क पर है, दूसरी पीछे की छोटी सड़क की तरफ़। सब में दो-दो कमरे हैं। स्नानघर यहाँ भी सब घरों में हैं। बाहर बस्ती में कुएँ सामूहिक प्रयोग के लिए हैं। ये कर्मचारियों या कामगारों के घर रहे होंगे।

मुअनजो-दड़ो में कुँओं को छोड़कर लगता है जैसे सब कुछ चौकोर या आयताकार हो। नगर की योजना, बस्तियाँ, घर, कुंड, बड़ी इमारतें, ठप्पेदार मुहरें, चौपड़ का खेल, गोटियाँ, तौलने के बाट आदि सब।

छोटे घरों में छोटे कमरे समझ में आते हैं। पर बड़े घरों में छोटे कमरे देखकर अचरज होता है। इसका एक अर्थ तो यह लगाया गया है कि शहर की आबादी काफ़ी रही होगी। दूसरी तरफ़ यह विचार सामने आया है कि बड़े घरों में निचली(भूतल)मंज़िल में नौकर-चाकर रहते होंगे। ऐसा अमेरिकी नृतत्त्वशास्त्री ग्रेगरी पोसेल का मानना है। बड़े घरों के आँगन में चौड़ी सीढ़ियाँ हैं। कुछ घरों में ऊपर की मंज़िल के निशान हैं, पर सीढ़ियाँ नहीं हैं। शायद यहाँ लकड़ी की सीढ़ियाँ रही हों, जो कालांतर में नष्ट हो गईं। संभव है ऊपर की मंज़िल में ज़्यादा खिड़कियाँ, झरोखे और साज-सज्जा रही हो। लकड़ी का इस्तेमाल भी बहुत संभव है पूरे घर में होता हो। कुछ घरों में बाहर की तरफ सीढ़ियों के संकेत हैं। यहाँ शायद ऊपर और नीचे अलग-अलग परिवार रहते होंगे। छोटे घरों की बस्ती में छोटी संकरी सीढ़ियाँ हैं। उनके पायदान भी ऊँचे हैं। ऐसा जगह की तंगी की वजह से होता होगा।

गौर किया कि मुअनजो-दड़ो के किसी घर में खिड़कियों या दरवाज़ों पर छज्जों के चिह्न नहीं हैं। गरम इलाकों के घरों में छाया के लिए यह आम प्रावधान होता है। क्या उस वक्त यहाँ इतनी कड़ी धूप नहीं पड़ती होगी? मुझे मुअनजो-दड़ो की जानी-मानी मुहरों के पशु याद हो आए। शेर, हाथी या गैंडा इस मरु-भूमि में हो नहीं सकते। क्या उस वक्त यहाँ जंगल भी थे? यह तथ्य स्थापित हो चुका है कि यहाँ अच्छी खेती होती थी। पुरातत्त्वी शीरीन रत्नागर का मानना है कि सिंधु-वासी कुँओं से सिंचाई कर लेते थे। दूसरे, मुअनजो-दड़ो की किसी खुदाई में नहर होने के प्रमाण नहीं मिले हैं। यानी बारिश उस काल में काफ़ी होती होगी। क्या बारिश घटने और कुँओं के अत्यधिक इस्तेमाल से भू-तल जल भी पहुँच से दूर चला गया? क्या पानी के अभाव में यह इलाका उजड़ा और उसके साथ सिंधु घाटी की समृद्ध सभ्यता भी?

मुअनजो-दड़ो में उस रोज़ हवा बहुत तेज़ बह रही थी। किसी बस्ती के टूटे-फूटे घर में दरवाज़े या खिड़की के सामने से हम गुज़रते तो सांय-सांय की ध्वनि में हवा की लय साफ़ पकड़ में आती थी। वैसे ही जैसे सड़क पर किसी वाहन से गुज़रते हुए किनारे की पटरी के अंतरालों में रह-रहकर हवा के लयबद्ध थपेड़े सुनाई पड़ते हैं। सूने घरों में हवा की लय और ज़्यादा गूँजती है। इतनी कि कोनों का अँधियारा भी सुनाई दे। यहाँ एक घर से दूसरे घर में जाने के लिए आपको किसी घर से वापस बाहर नहीं आना पड़ता। आखिर सब खंडहर हैं। सब कुछ खुला है। अब कोई घर जुदा नहीं है। एक घर दूसरे में खुलता है, दूसरा तीसरे में। जैसे पूरी बस्ती एक बड़ा घर हो। लेकिन घर एक नक्शा ही नहीं होता। हर घर का एक संस्कारमय आकार होता है। भले ही वह पाँच हज़ार साल पुराना घर क्यों न हो। हममें कमोबेश हर कोई पाँव आहिस्ता उठाते हुए एक घर से दूसरे घर में बेहद धीमी गति से दाखिल होता था। मानो मन में अतीत को निहारने की जिज्ञासा ही न हो, किसी अजनबी घर में **अनधिकार** चहल-कदमी का अपराध-बोध भी हो। जैसे किसी पराए घर में पिछवाड़े से चोरी-छुपे घुस आए सब जानते हैं यहाँ अब कोई बसने नहीं आएगा। लेकिन यह मुअनजो-दड़ो के पुरातात्त्विक अभियान की ही खूबी थी कि मिट्टी में इंच-दर-इंच कंघी कर इस कदर शहर, उसकी गलियों और घरों को ढूँढ़ा और सहेजा गया है कि यह अहसास हर वक्त आपके साथ रहता है, कल कोई यहाँ बसता था। ज़रूर यह आपकी **सभ्यता** परंपरा है। मगर घर आपका नहीं है।

अनचाहे मुझे मुअनजो-दड़ो की गलियों या घरों में राजस्थान का खयाल न आए, ऐसा नहीं हो सका। महज़ इसलिए नहीं कि (पश्चिमी) राजस्थान और सिंध-गुजरात की दृश्यावली एक-सी है। कई चीज़ें हैं जो मुझे यहाँ से वहाँ जोड़ जाती हैं। जैसे हज़ारों साल पुराने यहाँ के खेत। बाजरे और ज्वार की खेती। मुअनजो-दड़ो के घरों में टहलते हुए मुझे कुलधरा की याद आई। यह जैसलमेर के मुहाने पर पीले पत्थर के घरों वाला एक खूबसूरत गाँव है। उस खूबसूरती में हरदम

एक गमी व्याप्त है। गाँव में घर हैं, पर लोग नहीं हैं। कोई डेढ़ सौ साल पहले राजा से तकरार पर स्वाभिमानी गाँव का हर बाशिंदा रातोंरात अपना घर छोड़ चला गया। दरवाज़े-असबाब पीछे लोग उठा ले गए। घर खंडहर हो गए पर ढहे नहीं। घरों की दीवारें, प्रवेश और खिड़कियाँ ऐसी हैं जैसे कल की बात हो। लोग निकल गए, वक्त वहीं रह गया। खंडहरों ने उसे थाम लिया। जैसे सुबह लोग घरों से निकले हों, शायद शाम ढले लौट आने वाले हों।

राजस्थान ही नहीं, गुजरात, पंजाब और हरियाणा में भी कुएँ, कुंड, गली-कूचे, कच्ची-पक्की ईंटों के कई घर भी आज वैसे मिलते हैं जैसे हज़ारों साल पहले हुए।

जॉन मार्शल ने मुअनजो-दड़ो पर तीन खंडों का एक विशद प्रबंध छपवाया था। उसमें खुदाई में मिली ठोस पहियों वाली मिट्टी की गाड़ी के चित्र के साथ सिंध में पिछली सदी में बरती जा रही ठीक उसी तरह की बैलगाड़ी का भी एक चित्र प्रकाशित है। तसवीर से उन्होंने एक सतत् परंपरा का इज़हार किया, हालाँकि कमानी या आरे वाले पहिए का आविष्कार बहुत पहले हो चुका था जब मैं छोटा था, हमारे गाँव में भी लकड़ी वाले ठोस पहिए बैलगाड़ी में जुड़ते थे। दुल्हन पहली दफा इसी बैलगाड़ी में ससुराल जाती थी। बाद में हमारे यहाँ भी बैलगाड़ी में आरे वाले पहिए जुड़ने लगे। अब तो उसमें जीप के उतारू पहिए लगते हैं। हवाई जहाज़ के उतारू पहिए बाज़ार में आने के बाद ऊँटगाड़े (गाड़ी नहीं) का भी आविष्कार हो गया है। रेगिस्तान के जहाज़ से हवा के जहाज़ का यह ऐतिहासिक गठजोड़ है। हालाँकि कहना मुश्किल है कि दुल्हन की सवारी के रूप में बैलगाड़ी या ऊँटगाड़े का अब वहाँ कभी इस्तेमाल होता होगा!

हमारे मेज़बान ने ध्यान दिलाया कि मुअनजो-दड़ो का अजायबघर देखना अभी बाकी है। खंडहरों से निकल हम उस साबुत इमारत में आ गए। लेकिन प्रदर्शित सामान आपको खंडहरों से निकल आने का एहसास होने नहीं देता। अजायबघर छोटा ही है। जैसे किसी कस्बाई स्कूल की इमारत हो। सामान भी ज़्यादा नहीं है। अहम चीज़ें कराची, लाहौर, दिल्ली और लंदन में हैं। यों अकेले मुअनजो-दड़ो की खुदाई में निकली पंजीकृत चीज़ों की संख्या पचास हज़ार से ज़्यादा है। मगर जो मुट्ठी भर चीज़ें यहाँ प्रदर्शित हैं, पहुँची हुई सिंधु सभ्यता की झलक दिखाने को काफ़ी हैं। काला पड़ गया गेहूँ, ताँबे और काँसे के बर्तन, मुहरें, वाद्य, चाक पर बने विशाल मृद्-भांड, उन पर

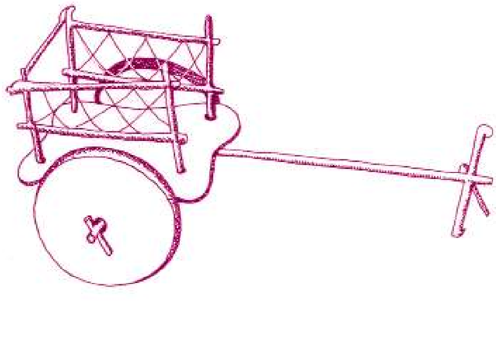

काले-भूरे चित्र, चौपड़ की गोटियाँ, दीये, माप-तौल पत्थर, ताँबे का आईना, मिट्टी की बैलगाड़ी और दूसरे खिलौने, दो पाटन वाली चक्की, कंघी, मिट्टी के कंगन, रंग-बिरंगे पत्थरों के मनकों वाले हार और पत्थर के औज़ार। अजायबघर में तैनात अली नवाज़ बताता है, कुछ सोने के गहने भी यहाँ हुआ करते थे जो चोरी हो गए।

एक खास बात यहाँ कोई भी महसूस करेगा। अजायबघर में प्रदर्शित चीज़ों में औज़ार तो हैं, पर हथियार कोई नहीं है। मुअनजो-दड़ो क्या, हड़प्पा से लेकर हरियाणा तक समूची सिंधु सभ्यता में हथियार उस तरह कहीं नहीं मिले हैं जैसे किसी राजतंत्र में होते हैं।

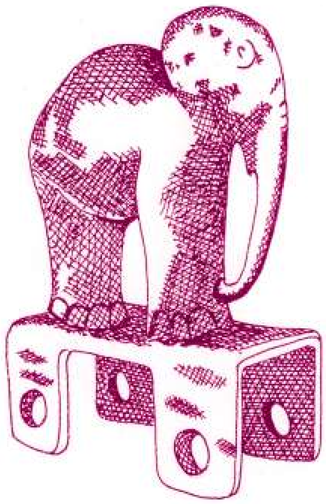

इस बात को लेकर विद्वान सिंधु सभ्यता में शासन या सामाजिक प्रबंध के तौर-तरीके को समझने की कोशिश कर रहे हैं। वहाँ अनुशासन ज़रूर था, पर ताकत के बल पर नहीं। वे मानते हैं कोई सैन्य सत्ता शायद यहाँ न रही हो। मगर कोई अनुशासन ज़रूर था जो नगर योजना, वास्तुशिल्प, मुहर-ठप्पों, पानी या साफ़-सफ़ाई जैसी सामाजिक व्यवस्थाओं आदि में एकरूपता तक को कायम रखे हुए था। दूसरी बात, जो सांस्कृतिक धरातल पर सिंधु घाटी सभ्यता को दूसरी सभ्यताओं से अलग ला खड़ा करती है, वह है प्रभुत्व या दिखावे के तेवर का नदारद होना।

दूसरी जगहों पर राजतंत्र या धर्मतंत्र की ताकत का प्रदर्शन करने वाले महल, उपासना-स्थल, मूर्तियाँ और पिरामिड आदि मिलते हैं। हड़प्पा संस्कृति में न भव्य राजप्रसाद मिले हैं, न मंदिर। न राजाओं,

महंतों की समाधियाँ। यहाँ के मूर्तिशिल्प छोटे हैं और औज़ार भी। मुअनजो-दड़ो के 'नरेश' के सिर पर जो 'मुकुट' है, शायद उससे छोटे सिरपेंच की कल्पना भी नहीं की जा सकती। और तो और, उन लोगों की नावें बनावट में मिस्र की नावों जैसी होते हुए भी आकार में छोटी रहीं। आज के मुहावरे में कह सकते हैं वह 'लो-प्रोफ़ाइल' सभ्यता थी; लघुता में भी महत्ता अनुभव करने वाली संस्कृति।

मुअनजो-दड़ो सिंधु सभ्यता का सबसे बड़ा शहर ही नहीं था, उसे साधनों और व्यवस्थाओं को देखते हुए सबसे समृद्ध भी माना गया है। फिर भी इसकी संपन्नता की बात कम हुई है तो शायद इसलिए कि उसमें भव्यता का आडंबर नहीं है। दूसरी वजह यह भी है कि मुअनजो-दड़ो और हड़प्पा पिछली सदी में ही उद्घाटित हो सके। उनकी अनबूझ लिपि अभी भी सारे रहस्य अपने में छिपाए हुए है।

नृत्य मुद्रा में लड़की
2500 ई. पूर्व

सिंधु घाटी के लोगों में कला या सुरुचि का महत्त्व ज़्यादा था। वास्तुकला या नगर-नियोजन ही नहीं, धातु और पत्थर की मूर्तियाँ, मृद्-भांड, उन पर चित्रित मनुष्य, वनस्पति और पशु-पक्षियों की छवियाँ, सुनिर्मित मुहरें, उन पर बारीकी से उत्कीर्ण आकृतियाँ, खिलौने, केश-विन्यास, आभूषण और सबसे ऊपर सुघड़ अक्षरों का लिपिरूप सिंधु सभ्यता को तकनीक-सिद्ध से ज़्यादा कला-सिद्ध ज़ाहिर करता है। एक पुरातत्त्ववेत्ता के मुताबिक सिंधु सभ्यता की खूबी उसका सौंदर्य-बोध है, "जो राज-पोषित या धर्म-पोषित न होकर समाज-पोषित था।" शायद इसीलिए आकार की भव्यता की जगह उसमें कला की भव्यता दिखाई देती है।

अजायबघर में रखी चीज़ों में कुछ सुइयाँ भी हैं। खुदाई में ताँबे और काँसे की तो बहुत सारी सुइयाँ मिली थीं। काशीनाथ दीक्षित को सोने की तीन सुइयाँ मिलीं जिनमें एक दो-इंच लंबी थी। समझा गया है कि यह बारीक कशीदेकारी[4] में काम आती होगी। याद करें, नर्तकी के अलावा मुअनजो-दड़ो के नाम से प्रसिद्ध जो दाढ़ी वाले 'नरेश' की मूर्ति है, उसके बदन पर आकर्षक गुलकारी[5] वाला दुशाला भी है। आज छापे वाला कपड़ा 'अजरक' सिंध

4. कपड़ों पर फूल/चित्र अंकित करने की कला

की खास पहचान बन गया है, पर कपड़ों पर छपाई का आविष्कार बहुत बाद का है। खुदाई में सुइयों के अलावा हाथीदाँत और ताँबे के सुए भी मिले हैं। जानकार मानते हैं कि इनसे शायद दरियाँ बुनी जाती थीं। हालाँकि दरी का कोई नमूना या साक्ष्य हासिल नहीं हुआ है।

वह शायद कभी हासिल न हो, क्योंकि मुअनजो-दड़ो में अब खुदाई बंद कर दी गई है। सिंधु के पानी के रिसाव से क्षार और दलदल की समस्या पैदा हो गई है। मौजूदा खंडहरों को बचाकर रखना ही अब अपने आप में बड़ी चुनौती है।

5. कशीदाकारी, कपड़ों पर फूल/चित्र अंकित करने की कला

अभ्यास

1. सिंधु-सभ्यता साधन-संपन्न थी, पर उसमें भव्यता का आडंबर नहीं था। कैसे?
2. 'सिंधु-सभ्यता की खूबी उसका सौंदर्य-बोध है जो राज-पोषित या धर्म-पोषित न होकर समाज-पोषित था।' ऐसा क्यों कहा गया?
3. पुरातत्व के किन चिह्नों के आधार पर आप यह कह सकते हैं कि-"सिंधु-सभ्यता ताकत से शासित होने की अपेक्षा समझ से अनुशासित सभ्यता थी।"
4. 'यह सच है कि यहाँ किसी आँगन की टूटी-फूटी सीढ़ियाँ अब आप को कहीं नहीं ले जातीं; वे आकाश की तरफ़ अधूरी रह जाती हैं। लेकिन उन अधूरे पायदानों पर खड़े होकर अनुभव किया जा सकता है कि आप दुनिया की छत पर हैं, वहाँ से आप इतिहास को नहीं उस के पार झाँक रहे हैं।' इस कथन के पीछे लेखक का क्या आशय है?
5. टूटे-फूटे खंडहर, सभ्यता और संस्कृति के इतिहास के साथ-साथ धड़कती ज़िंदगियों के अनछुए समयों का भी दस्तावेज़ होते हैं- इस कथन का भाव स्पष्ट कीजिए।
6. इस पाठ में एक ऐसे स्थान का वर्णन है जिसे बहुत कम लोगों ने देखा होगा, परंतु इससे आपके मन में उस नगर की एक तसवीर बनती है। किसी ऐसे ऐतिहासिक स्थल, जिसको आपने नज़दीक से देखा हो, का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
7. नदी, कुएँ, स्नानागार और बेजोड़ निकासी व्यवस्था को देखते हुए लेखक पाठकों से प्रश्न पूछता है कि क्या हम सिंधु घाटी सभ्यता को **जल-संस्कृति** कह सकते हैं? आपका जवाब लेखक के पक्ष में है या विपक्ष में? तर्क दें।
8. सिंधु घाटी सभ्यता का कोई लिखित साक्ष्य नहीं मिला है। सिर्फ़ अवशेषों के आधार पर ही धारणा बनाई है। इस लेख में मुअनजो-दड़ो के बारे में जो धारणा व्यक्त की गई है। क्या आपके मन में इससे कोई भिन्न धारणा या भाव भी पैदा होता है? इन संभावनाओं पर कक्षा में समूह-चर्चा करें।